व्यवहार सूत्र

सुश्री मीना बोहरा

चार छेदसूत्रों में व्यवहार सूत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें प्रायश्चित, आलोचना, पदों की योग्यता–अयोग्यता, पुनर्दीक्षा, विहार, आहार, निवास आदि श्रमणाचार संबंधी विविध व्यवहारों पर प्रकाश डाला गया है। आगम अध्येत्री एवं अध्यापिका सुश्री मीना बोहरा, एम.ए.(संस्कृत) ने व्यवहार सूत्र की विषयवस्तु को अपने आलेख में संक्षेप में उपनिबद्ध किया है, जिससे व्यवहार सूत्र के प्रतिपाद्य का सरलतया बोध हो जाता है।

–सम्पादक

व्यवहार सूत्र की गणना छेद सूत्रों में होती है। छेद सूत्रों में निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थियों की प्रायश्चित्त–विधि का विधान किया गया है। छेद का अर्थ करते हुए बताया गया है–

बज्झाणुट्ठाणेणं जेण ण बाहिज्जए त ये णियया।
संभवइ य परिसुद्धं सो पुण धम्मम्मि छेउत्ति।।

जिन क्रियाओं से धर्म में बाधा नहीं आती हो और जिससे आत्मा निर्मल होती हो उसे छेद कहते हैं। ये सूत्र चारित्र की शुद्धता स्थिर रखने के लिए हैं। निशीथ के भाष्यकर्ता ने छेद सूत्रों को प्रवचन का रहस्य बताते हुए गुह्य बताया है–

तम्हा न कहेयव्वं आयरियेण पवयणरहस्सं।
खेत्तं कालं पुरिसं नाऊण पगासए गुज्झं।।– निशीथभाष्य19.6184

संयमी जीवन यात्रा के दौरान लगे दोषों और प्रायश्चित्त द्वारा उनकी शुद्धि का वर्णन छेद सूत्रों में उपलब्ध है। इससे यह सूचित होता है कि जैन दर्शन में मानव की कमजोरियों को छिपाया नहीं गया है, अपितु अत्यन्त साहसपूर्वक यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है और उनसे मुक्त होने का उपाय बताया गया है।

प्रबल कारण होने पर न चाहते हुए भी या याद न रहने से या प्रमत्तता की स्थिति में दोष का सेवन हो जाता है। उस दोष की शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त आवश्यक है, यही छेद सूत्रों का वर्ण्य विषय है।

आर्य आर्यरक्षित ने आगमों को अनुयोगों के आधार पर चार भागों में विभक्त किया (आवश्यक निर्युक्ति ३६३–३६७)। उसके प्रथम भाग चरणकरणानुयोग के अन्तर्गत छेद सूत्रों को लिया गया है। छेद सूत्र का नामोल्लेख सर्वप्रथम आवश्यक निर्युक्ति (७७०) में हुआ है। इसके पश्चात् विशेषावश्यक भाष्य (२२९५) एवं निशीथ भाष्य (५९४७) में हुआ है।

छेद सूत्र की आचार संहिता को 'जैनागम साहित्य : मनन और मीमांसा' (पृ. ३४७) पुस्तक में चार भागों में विभक्त किया गया है–१. उत्सर्ग (सामान्य विधान) २. अपवाद (परिस्थिति विशेष की दृष्टि से विशेष विधान) ३. दोष (उत्सर्ग एवं अपवाद को भंग करना) और ४. प्रायश्चित्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(दोष लगने पर आलोचना करके उचित दण्ड लेकर संयमी-जीवन की शुद्धि करना)। छेद सूत्र संक्षिप्त शैली में लिखे गये हैं। इनके कर्त्ता चतुर्दश पूर्वधारी भद्रबाहु माने जाते हैं।

व्यवहार सूत्र तृतीय छेद सूत्र है। व्यवहार सूत्र को द्वादशांग का नवनीत कहा जाता है। इसके दसवें उद्देशक के तीसरे सूत्र में पांच व्यवहारों के नाम हैं। इस सूत्र का नामकरण इन पांच व्यवहारों को मुख्य मानकर किया गया है। व्यवहार सूत्र, निशीथ की अपेक्षा छोटा एवं बृहत्कल्प की अपेक्षा बड़ा है। चार छेद सूत्रों में यही एक ऐसा सूत्र है जिसके नाम में प्रारम्भ से लेकर आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अन्य छेद सूत्रों की भांति इसमें भी श्रमण.जीवन की आचार–संहिता का वर्णन किया गया है। बृहत्कल्प एवं व्यवहार इन दोनों सूत्रों को एक–दूसरे का पूरक माना जाता है।

'व्यवहार' शब्द 'वि' एवं 'अव' उपसर्ग पूर्वक 'हृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। 'वि' उपसर्ग विविधता का सूचक है, 'अव' संदेह का। हृ धातु से घञ् प्रत्यय करने पर 'हार' शब्द बनता है। जो हरण क्रिया का सूचक है अतः व्यवहार का अर्थ हुआ–जिससे विविधसंशयों का हरण होता है वह व्यवहार है–

नाना संदेहहरणाद् व्यवहार इति स्थितिः– कात्यायन।

'ववहार सुत्तं (मुनि कन्हैयालाल 'कमल') में व्यवहार सूत्र के तीन प्रमुख विषय बताये गये हैं– व्यवहार, व्यवहारी एवं व्यवहर्तव्य। दसवें उद्देशक में वर्णित पांच व्यवहार साधन हैं, शुद्धि करने वाले आचार्यादि पदवीधर व्यवहारी और निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थियाँ व्यवहर्तव्य (व्यवहार करने योग्य) हैं। व्यवहार की लौकिक एवं लोकोत्तर ये दो व्याख्याएँ की गई हैं। लौकिक व्याख्या में पुनः दो भेद किये गए हैं– सामान्य एवं विशेष। दूसरे के साथ किया जाने वाला व्यवहार सामान्य है और अपराध करने पर राज्य शासन द्वारा उचित दण्ड का निर्णय करना अर्थात् न्याय 'विशेष' है। लोकोत्तर व्याख्या भी दो प्रकार की है–सामान्य एवं विशेष। एक गण का दूसरे गण के साथ किया जाने वाला व्यवहार 'सामान्य' है और सर्वज्ञ द्वारा कथित विधि से तप आदि अनुष्ठान का वपन एवं उससे अतिचार जन्य पाप का हरण 'विशेष' व्यवहार है (व्यवहार भाष्य पीठिका गाथा ४)

व्यवहार के विधि एवं अविधि के भेद से दो प्रकार हैं। अविधि व्यवहार मोक्ष का विरोधी है और विधि व्यवहार मोक्ष का सहयोगी। अतः सूत्र का विषय विधि व्यवहार है। (व्यवहार भाष्य पीठिका गाथा ६)

व्यवहार सूत्र में १० उद्देशक हैं। ३७३ अनुष्टुप् श्लोक परिमाण वर्तमान में उपलब्ध मूल पाठ है। १० उद्देशकों में सूत्र संख्या क्रमशः इस प्रकार है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्देशक	सूत्र संख्या (ववहार सुत्तं–मुनि कन्हैयालाल 'कमल')	सूत्र संख्या (त्रीणि छेदसूत्राणि, ब्यावर)
प्रथम	३३	३३
द्वितीय	३०	२९
तृतीय	२९	२९
चतुर्थ	३२	३२
पंचम	२१	२१
षष्ठ	२१	११
सप्तम	२७	२६
अष्टम	१७	१७
नवम	४६	४६
दशम	४९	३७

प्रथम उद्देशक

सूत्र १ से १८ में परिहार योग्य स्थल का सेवन करने पर एक मास से लेकर छः मास तक के प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। यहां उत्कृष्ट प्रायश्चित्त छः माह इसलिए बताया गया है, क्योंकि जिस तीर्थंकर का शासन होता है उस तीर्थंकर के शासन में जितना तप उत्कृष्ट माना जाता है उसी के अनुसार उनके आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियों को उत्कृष्ट तप का प्रायश्चित्त दिया जाता है। भ. महावीर के शासन का उत्कृष्ट तप ६ माह है। प्रथम सूत्र में बताया गया है कि जो भिक्षु या भिक्षुणी एक बार मासिक परिहार स्थान अर्थात् त्यागने योग्य स्थान की प्रतिसेवना (आचरण) करके दोषों की आलोचना करे तो आचार्यादि मायारहित आलोचना करने वाले को एक मास का तथा माया सहित आलोचना करने वाले को दो मास का प्रायश्चित्त दें। मायारहित आलोचना कर्ता के लिए जो प्रायश्चित्त है, माया सहित आलोचना–कर्ता के लिए उससे एक मास अधिक प्रायश्चित का विधान है। इससे स्पष्ट होता है कि सरलता में ही धर्म है, चारित्र शुद्धि है– **सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।** मायावी व्यक्ति ज्यादा अपराधी होता है, इसीलिए उसे ज्यादा प्रायश्चित्त दिया जाता है। इस तरह क्रमशः द्विमासिक, त्रिमासिक, चातुर्मासिक, पंचमासिक परिहार स्थान की एक या अनेक बार प्रतिसेवना करने पर प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। जिसने अनेक दोषों का सेवन किया हो उसे क्रमशः आलोचना करनी चाहिए और फिर सभी का साथ में प्रायश्चित्त लेना चाहिए। प्रायश्चित्त करते हुए यदि पुनः दोष लग जाए तो उसका पुनः प्रायश्चित्त लेना चाहिए। इन सूत्रों में यह भी बताया गया है कि जो पारिहारिक है अर्थात् परिहार तप को वहन करने वाला है वह किसी अन्य भिक्षु से संभाषण नहीं कर सकता, आहारादि का आदान–प्रदान नहीं कर सकता। केवल कल्पाक (प्रायश्चित्त देने वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यादि) वाचना करा सकते हैं एवं एक भिक्षु को कल्पाक ही पारिहारिक की वैयावृत्य के लिए नियुक्त करते हैं। उस भिक्षु को अनुपारिहारिक कहा जाता है। ये १८ सूत्र निशीथ सूत्र के उद्देशक २० के समान हैं। सूत्र १९ में बताया गया है कि अनेक पारिहारिक एवं अपारिहारिक भिक्षु स्थविर की आज्ञा के बिना एक साथ रहना, बैठना आदि प्रवृत्ति नहीं कर सकते हैं। यदि वे ऐसा करते हैं तो जितने दिन करें उतने दिनों का दीक्षा छेद या परिहार तप का प्रायश्चित्त आता है। यहां यह स्पष्ट होता है कि समूह में रहकर भी पारिहारिक भिक्षु अकेला कार्य करता है। समूह में रहने का कारण यह हो सकता है कि इसे देखकर अन्य भिक्षुओं को भय उत्पन्न हो जिससे वे दोष का सेवन न करें तथा पारिहारिक भी कपट न करते हुए शुद्धिपूर्वक प्रायश्चित्त का पालन करे।

सूत्र २०,२१ व २२ में प्रायश्चित्त काल में वैयावृत्य हेतु विहार का विधान किया गया है। पारिहारिक भिक्षु स्थविर की आज्ञा से किसी रोगी स्थविर की सेवा के लिए अन्यत्र जा सकता है। विहार में तप करने की शक्ति न हो तो स्थविर की आज्ञा से तप छोड़कर भी जा सकता है। इन सूत्रों में वैयावृत्य की महत्ता प्रतिपादित की गई है। उत्तराध्ययन आदि अन्य जैनागमों में भी वैयावृत्य का अवसर होने पर स्वाध्याय आदि प्रमुख कार्यों को छोड़ने का निर्देश है–

वेयावच्चे निउत्तेणं, कायव्वं अगिलायओ।– उत्तराध्ययन 26.10

मार्ग में भी पारिहारिक भिक्षु को अकारण ज्यादा नहीं ठहरना चाहिए। अकारण जितने दिन रुके उतने दिन का दीक्षा छेद या परिहार तप का प्रायश्चित्त आता है।

सूत्र २३ से २५ में एकाकी विहार प्रतिमा प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। यदि कोई एकलविहारी भिक्षु आचार्य, उपाध्याय, गणावच्छेदक पुनः गण में आने की इच्छा करे तो उसे यथायोग्य प्रायश्चित्त देकर गण में रख लेना चाहिए।

सूत्र २७ से ३० में पासत्थादि पांच प्रकार के भिक्षुओं के प्रायश्चित्त का विधान है। यदि भिक्षु गण से निकलकर पार्श्वस्थ, यथाच्छन्द, कुशील, अवसन्न या संसत्त विहार प्रतिमा को अंगीकार कर विचरे और पुनः उसी गण में आना चाहे तो यदि उसका चारित्र कुछ शेष हो और संयम पालन के भाव हों तो तप या छेद का प्रायश्चित्त देकर पुनः गण में सम्मिलित कर लेना चाहिए। सूत्र ३१ में बताया है कि यदि कोई भिक्षु गण से निकल कर परपाषण्ड प्रतिमा (अन्य तीर्थियों की वेशभूषा) को धारण कर विचरे और पुनः उसी गण में आना चाहे तो उसे आलोचना के अतिरिक्त और कोई प्रायश्चित्त नहीं दिया जाए।

सूत्र ३२ में कोई भिक्षु यदि गण से निकल कर गृहस्थ लिंग धारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर ले तो उसे नई दीक्षा ही दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रायश्चित्त नहीं आता है।

सूत्र ३३ में बताया गया है कि भिक्षु ७ व्यक्तियों के समक्ष अपने अकृत्य स्थान की आलोचना कर सकता है— १. आचार्य के पास २. उनके अभाव में स्वगच्छ के बहुश्रुत के पास ३. उनके अभाव में अन्य गच्छ के बहुश्रुत के पास ४. उनके अभाव में सारूपिक साधु के पास ५. उनके अभाव में पश्चात्कृत श्रमणोपासक (जो महाव्रत छोड़कर श्रावक बना हो) के पास ६. उनके अभाव में सम्यग्दृष्टि के पास और ७. उनके अभाव में ग्राम के बाहर अरिहंत-सिद्ध प्रभु की साक्षी में।

द्वितीय उद्देशक

सूत्र १ से ४ में विचरने वाले साधर्मिकों के परिहार तप का विधान किया गया है। दो साधर्मिक साधु साथ विचरण कर रहे हों, उनमें से यदि एक अकृत्य स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो उसे प्रायश्चित्त दिया जावे और दूसरा उसकी वैयावृत्य करे। यदि दोनों निर्ग्रन्थ दोष के भागी हों तो पहले एक कल्पाक स्थापित हो और दूसरा तप करे, कल्पाक ही वैयावृत्य भी करे। एक का परिहार तप पूर्ण होने पर कल्पाक पारिहारिक साधु बने और पारिहारिक कल्पाक बने। अनेक साधर्मिक साधु साथ विचर रहे हों और कोई श्रमण दोष का सेवन कर आलोचना करे तो प्रमुख स्थविर प्रायश्चित्त धारण करावे एवं एक भिक्षु को उसकी सेवा के लिए नियुक्त करे। सारे साधर्मिक अकृत्य स्थान का सेवन करे तो एक कल्पाक बने, शेष पारिहारिक। बाद में कल्पाक प्रायश्चित्त वहन करे।

सूत्र ५ में बताया गया है कि पारिहारिक भिक्षु रोगी होने पर किसी अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करे तो उसके लिए तीन विकल्प हैं— १. यदि वह तप करने में समर्थ हो तो तप रूप प्रायश्चित्त देवे एवं अनुपारिहारिक को सेवा में नियुक्त करे। २. तप करने में असमर्थ होने पर वैयावृत्य के लिए अनुपारिहारिक भिक्षु नियुक्त करे ३. यदि पारिहारिक समर्थ होते हुए भी निर्बलता का दिखावा करे अनुपारिहारिक भिक्षु से सेवा करावे तो उसका प्रायश्चित्त, पूर्व प्रायश्चित्त में आरोपित करे। सूत्र ६ से १७ में १२ प्रकार की विभिन्न अवस्थाओं वाले भिक्षुओं का वर्णन है— १. परिहार तप वहन करने वाला २. नवम प्रायश्चित्त तप का सेवन करने वाला ३. दसवें प्रायश्चित्त तप का सेवन कर्ता ४. विक्षिप्त चित्त से पीड़ित ५. दीप्तचित्त (हर्षातिरेक) से पीड़ित ६. यक्षावेश से पीड़ित ७. मोहोदय से उन्मत्त ८. उपसर्ग से पीड़ित ९. कषाय से पीड़ित १०. अधिक प्रायश्चित्त देने से भयभीत ११. भक्त पान प्रत्याख्यान से पीड़ित तथा १२. धन के प्रलोभन से पीड़ित।

इन रुग्ण भिक्षुओं को गण से निकालने का निषेध किया गया है। जब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक वे रोग से मुक्त न हों तब तक उनकी अग्लान भाव से सेवा करने का निर्देश दिया गया है। बाद में गणावच्छेदक उस पारिहारिक भिक्षु को अत्यल्प प्रायश्चित्त में प्रस्थापित करे।

सूत्र १८ से २२ में अनवस्थाप्य (चोरी या मारामारी करने वाले नवम प्रायश्चित्त के पात्र साधु) एवं पारांचिक (दसवें प्रायश्चित्त के पात्र) भिक्षु को पुन: दीक्षित करने का विधान किया गया है। अनवस्थाप्य एवं पारांचिक भिक्षु को गृहस्थ लिंग धारण करवाकर ही पुन: संयम में उपस्थापित करने का निर्देश है। कदाचित् गृहस्थ लिंग को धारण कराये बिना भी पुन: दीक्षा देना गण के प्रमुख के निर्णय पर निर्भर है। गण का हित जिस तरह करने में हो वैसा कर सकता है।

सूत्र २३–२४ में बताया गया है कि यदि कोई भिक्षु अन्य भिक्षु पर आक्षेप लगाए और विवाद पूर्ण स्थिति हो तो स्पष्ट प्रमाणित होने पर ही प्रायश्चित्त देना चाहिए, प्रमाणित न होने पर स्वयं दोषी के दोष स्वीकारने पर ही उसे प्रायश्चित्त देना चाहिए। गण प्रमुख को कभी भी एक पक्ष के कथन से ही निर्णय नहीं करना चाहिए, अपितु उभय पक्ष को सुनकर उचित निर्णय करना चाहिए।

सूत्र २५ में बताया गया है कि एकपक्षीय अर्थात् एक ही आचार्य के पास दीक्षा और श्रुत ग्रहण करने वाले भिक्षु को अल्प समय के लिए या यावज्जीवन आचार्य या उपाध्याय के पद पर स्थापित करना या धारण करना कल्पता है।

सूत्र २६ से २९ में पारिहारिक एवं अपारिहारिकों के परस्पर आहार-संबंधी व्यवहार का कथन है। यदि पारिहारिक के साथ अपारिहारिक एक माह तक साथ रहे तो ५ दिनों बाद साथ बैठकर आहार कर सकते हैं, २ माह रहने पर १० दिन बाद, इस तरह ६ मास साथ रहने पर एक मास बाद, साथ बैठकर आहार कर सकते हैं। पारिहारिक को स्थविर की आज्ञा से ही आहार दिया जा सकता है तथा पारिहारिक स्थविर की आज्ञा होने पर ही कभी दोनों पक्षों की गोचरी ला सकता है एवं परिस्थितिवश विगय सेवन कर सकता है। आहार पात्र तो अलग–अलग ही होने चाहिए।

तृतीय उद्देशक

सूत्र १ व २ में भिक्षु के गण धारण का विधान किया गया है। सूत्र ज्ञान की योग्यता से युक्त परिच्छन्न (आचारांगादि सूत्रों के परिज्ञान से युक्त) भिक्षु ही गणप्रमुख बन सकता है, किन्तु स्थविरों की आज्ञा के बिना वह ऐसा नहीं कर सकता। यदि ऐसा करता है तो जितने दिन गणनायक बनता है उतने ही दिन की दीक्षा का छेद या परिहार तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है। उसके साथ वाले साधुओं को यह प्रायश्चित्त नहीं आता है।

सूत्र ३–४ में उपाध्याय पद की योग्यता का विधान है। ३ वर्ष की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा पर्याय वाला, आचार कुशल, संयम कुशल, प्रवचन कुशल, प्रज्ञप्ति कुशल, संग्रह कुशल, अक्षत चारित्र वाला, बहुश्रुत और कम से कम आचार प्रकल्प को धारण करने वाला उपाध्याय पद के योग्य है। इन गुणों के अभाव में उपाध्याय पद को धारण नहीं कर सकता है।

सूत्र ५–६ में आचार्य एवं उपाध्याय पद की योग्यता एवं अयोग्यता का विधान किया गया है। उपाध्याय के योग्य गुणों के अतिरिक्त दीक्षा पर्याय ५ वर्ष और कम से कम आचारांग, सूत्रकृतांग और ४ छेद सूत्र कण्ठस्थ हो तो आचार्य पद पर नियुक्त हो सकता है। इनके अभाव में नहीं।

सूत्र ७–८ में गणावच्छेदक की योग्यता का कथन है। उपर्युक्त गुण सम्पन्न व ८ वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला तथा पूर्वोक्त आगम सहित स्थानांग समवायांग सूत्र को कण्ठस्थ करने वाला गणावच्छेदक पद पर नियुक्ति योग्य है।

सूत्र ९–१० में बताया गया है कि निरुद्ध पर्याय (अनेक वर्षों तक संयम का पालन करके विशेष कारण से स्वजन संबंधी के द्वारा बलपूर्वक भिक्षु वेष से मुक्त होने वाला) तथा निरुद्ध वर्ष पर्याय (जिस भिक्षु की दीक्षा पर्याय केवल ३ वर्ष की हुई है और श्रुत का अध्ययन भी उसका पूर्ण नहीं हुआ है, उसे यदि सम्बन्धी बलपूर्वक भिक्षुवेष से मुक्त कर ले जावे) भिक्षु को विशेष परिस्थिति में आचार्य, उपाध्याय पद पर नियुक्त किया जा सकता है। इस विधान से नवदीक्षित को उसी दिन आचार्य बनाया जा सकता है।

सूत्र ११ व १२ में ४० वर्ष से कम आयु वाले एवं ३ वर्ष की दीक्षा पर्याय से कम संयम वाले साधु-साध्वियों को आचार्य, उपाध्याय एवं प्रवर्तिनी के बिना रहने का निषेध किया गया है। सूत्र १३ से १७ में बताया गया है कि भिक्षु गण को छोड़कर मैथुन सेवन करे और बाद में पुन: दीक्षित हो जाए तो ३ वर्ष पर्यन्त आचार्यादि पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है। पद छोड़े बिना मैथुन सेवन करने पर आजीवन पद धारण के योग्य नहीं रहता है।

सूत्र १८ से २२ में बताया गया है कि यदि कोई भिक्षु वेदमोहनीय जन्य कामना से वशीभूत होकर अन्य भिक्षु को पद पर नियुक्त कर वेश छोड़कर अन्यत्र जाकर मैथुन सेवन करे और बाद में पुन: वहां जाकर दीक्षित हो जावे तो उसे ३ वर्ष पर्यन्त पद देना नहीं कल्पता है। वेश छोड़े बिना अकृत्य करने पर या अन्य को पद भार सौंपे बिना संयम छोड़कर जाने पर यावज्जीवन उस भिक्षु को पद नहीं दिया जा सकता है।

सूत्र २३ से २९ में बताया गया है कि बहुश्रुत भिक्षु या आचार्य आदि पदवीधर अनेक बार झूठ–कपट आदि अपवित्र एवं पापकारी कृत्य करें तो वे जीवन भर के लिए सभी प्रकार की पदवियों के सर्वथा अयोग्य हो जाते हैं।

चतुर्थ उद्देशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १ से १० में आचार्य, उपाध्याय तथा गणावच्छेदक के वर्षावास एवं अन्य समय में साथ रहने वाले भिक्षुओं की संख्या का निर्देश किया गया है। उपर्युक्त पदवीधर हेमन्त व ग्रीष्म ऋतु में अकेले विहार नहीं कर सकते, आचार्य एवं उपाध्याय एक अन्य साधु के साथ तथा गणावच्छेदक दो अन्य साधुओं के साथ विहार कर सकते हैं। वर्षावास में क्रमशः २ व ३ साधुओं के साथ रह सकते हैं। यहां यह भी विधान है कि अनेक पदवीधर भी उपर्युक्त साधु.संख्या अपनी अपनी नेश्राय में रखते हुए ही साथ–साथ विचरण या वर्षावास करें।

सूत्र ११ व १२ में आचार्य आदि विशिष्ट पदवीधर के काल करने पर शेष साधुओं के कर्त्तव्यों का विधान किया गया है। जो भिक्षु उस गण में विशिष्ट पद के योग्य हो उसे ही पद पर स्थापित करना चाहिए, योग्य न होने पर शीघ्र ही योग्य साधुओं के पास या अन्य आचार्य आदि के समक्ष पहुंचना चाहिए।

सूत्र १३ व १४ में रुग्ण आचार्य या संयम-त्याग करके जाने वाले आचार्य आदि के आदेश अनुसार योग्य भिक्षु को आचार्यादि पद देने का विधान किया गया है। यदि अयोग्य हो और उसे कोई गीतार्थ भिक्षु यह कह देवे कि तुम इस पद को छोड़ दो और वह न छोड़े तो जितने दिन न छोड़े उतने दिन का दीक्षा छेद या परिहार तप के प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

सूत्र १५ से १७ में नवदीक्षित भिक्षु के योग्य होने पर (कल्पाक) ११ दिन में उसे बड़ी दीक्षा दे देनी चाहिए। उसका उल्लंघन करने पर आचार्य उपाध्याय को जितने दिन उल्लंघन करे उतने दिन का छेद प्रायश्चित्त आता है। यदि नवदीक्षित के साथ माननीय माता–पिता आदि ने भी दीक्षा ली हो और वे तब तक षड्जीवनिकाय का अध्ययन पूर्ण न कर पायें हों तो माननीय व्यक्ति को ज्येष्ठ रखने के लिए कल्पाक की बड़ी दीक्षा रोके, कल्पाक एवं माननीय व्यक्तियों को साथ बड़ी दीक्षा देवे तो वे प्रायश्चित्त के पात्र नहीं होते हैं।

सूत्र १८ में विशिष्ट ज्ञान-प्राप्ति के लिए यदि कोई भिक्षु अपना गण छोड़कर अन्य गण में जावे और उसे अन्य भिक्षु पूछे कि तुम किसकी देखरेख में विचर रहे हो तो उसके गण में जो दीक्षा में सबसे बड़ा हो उसका नाम कहे। उसके बाद आवश्यक होने पर सबसे अधिक बहुश्रुत भिक्षु का नाम लेवे।

सूत्र १९ में अनेक साधर्मिक साधु एक साथ अभिनिचरिका (गोचरी के समय से पूर्व गोचरी जाना या अन्य क्षेत्र में गोचरी जाना) करना चाहें तो स्थविर की आज्ञा लेना आवश्यक है। आज्ञा न लेने पर जितने दिन ऐसा करे उतने दिन के दीक्षा–छेद या परिहार प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

सूत्र २० से २३ में प्रविष्ट एवं निवृत्त अभिनिचरिका वाले आज्ञाप्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षु के विनय—व्यवहार का कथन किया गया है। मर्यादित दिनों से पूर्व आचार्य आदि मिल जावें तो पूर्व आज्ञा से ही विचरण करना चाहिए, किन्तु मर्यादित दिनों (४—५) के बाद अभिनिचरिका के लिए पुन: आज्ञा लेनी आवश्यक है।

सूत्र २४—२५ में साथ रहने वाले भिक्षुओं के साथ विनय व्यवहार का कथन है। अधिक दीक्षा पर्याय वाला भिक्षु कम दीक्षा पर्याय वाले भिक्षु की सेवा, इच्छा हो तो करे, इच्छा न हो तो न करे, पर रोगी हो तो सेवा करना अनिवार्य है।दीक्षा पर्याय में छोटे भिक्षु को ज्येष्ठ भिक्षु की सेवा करना अनिवार्य है। ज्येष्ठ सहयोग न लेना चाहे तो आवश्यक नहीं।

सूत्र २६ से ३२ में बताया गया है कि अनेक भिक्षु, अनेक आचार्य, उपाध्याय आदि साथ—साथ विवचरण करें तो उन्हें परस्पर समान बनकर नहीं रहना चाहिए, अपितु जो दीक्षा में ज्येष्ठ हो उसी को प्रमुख मानना चाहिए।

पंचम उद्देशक

सूत्र १ से १० में निर्देशित किया गया है कि प्रवर्तिनी कम से कम दो साध्वियों को लेकर विहार करे एवं ३ साध्वियों के साथ चातुर्मास करे। गणावच्छेदिका के लिये उपर्युक्त निर्दिष्ट साध्वियों में क्रमश: एक—एक संख्या बढ़ाने का निर्देश है।

सूत्र ११—१२ में प्रमुख साध्वी के काल करने पर शेष साध्वियों में से योग्य साध्वी को प्रमुखा बनाकर विचरण करने का निर्देश है। योग्य न होने पर शीघ्र ही अन्य संघाड़े में मिल जाने का विधान है।

सूत्र १३—१४ में कहा गया है कि प्रवर्तिनी के आदेश अनुसार योग्य साध्वी को पदवी देनी चाहिए। योग्य न होने पर अन्य को पदवी दी जा सकती है। अयोग्य साध्वी को यदि अन्य साध्वियाँ पद छोड़ने का न कहें तो वे सभी साध्वियाँ दीक्षा छेद या तप प्रायश्चित्त की पात्र होती हैं।

सूत्र १५—१६ में बताया गया है कि यदि कोई साधु या साध्वी प्रमादवश आचारांग व निशीथ सूत्र विस्मृत करता है तो वह जीवनपर्यन्त किसी भी पद के योग्य नहीं होता। रोगादि के कारण उपर्युक्त सूत्र विस्मृत हुए हों तो पुन: कण्ठस्थ करने के बाद उसे पद दिया जा सकता है।

सूत्र १७—१८ में कथन है कि वृद्धावस्था प्राप्त भिक्षु को यदि आचार प्रकल्प अध्ययन विस्मृत हो जाए तो पुन: कण्ठस्थ करे या न करे तो भी उन्हें पद दिया जा सकता है। वे सोते—सोते, बैठे—बैठे (आराम से) भी सूत्र की पुनरावृत्ति, श्रवण या पृच्छा कर सकते हैं।

सूत्र १९ में निर्देशित है कि विशेष परिस्थिति के बिना साधु-साध्वी को परस्पर आलोचना प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिए। सूत्र २० में परस्पर सेवा कार्य का भी निषेध किया गया है। सूत्र २१ में रात्रि में सर्प काटने पर स्थविरकल्पी भिक्षु को चिकित्सा कराना कल्पता है। उपचार करवाने पर भी वे प्रायश्चित्त के भागी नहीं होते हैं। जिनकल्पी को उपचार कराना नहीं कल्पता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठ उद्देशक

सूत्र १ में बताया गया है कि भिक्षु स्थविर की आज्ञा लेकर ही स्व—ज्ञातिजनों के यहां गोचरी के लिए जावे। आज्ञा के बिना जाने पर प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं। अल्पश्रुत व अगीतार्थ भिक्षु को ज्ञातिजनों के यहां अकेले जाना नहीं कल्पता है। गीतार्थ भिक्षु के साथ ही जाना कल्पता है। वहां पहुँचने से पूर्व जो वस्तु बनी है वही लेनी चाहिए, बाद में बनी वस्तु नहीं लेनी चाहिए।

सूत्र २—३ में आचार्य आदि के अतिशय का उल्लेख किया गया है। आचार्य एवं उपाध्याय के पांच अतिशय हैं—

१. दोनों उपाश्रय के भीतर पैरों की रज साफ कर सकते हैं।

२. मल.मूत्र त्याग कर सकते हैं ३. उनका सेवा कार्य ऐच्छिक होता है।

४—५ उपाश्रय के बाहर एवं भीतर विशेष कारण से एक—दो रात अकेले रह सकते हैं।

गणावच्छेदक के दो अतिशय हैं— १—२ उपाश्रय के बाहर एवं भीतर एक—दो रात अकेले रह सकते हैं।

सूत्र ४—५ में कहा गया है कि अनेक अगीतार्थ भिक्षुओं को आचारप्रकल्प— धर के बिना एक साथ रहना नहीं कल्पता है। यदि रहे तो प्रायश्चित्त तप के पात्र होते हैं। परिस्थितिवश योग्य उपाश्रय में १—२ रात रह सकते हैं।

सूत्र ६—७ में बताया गया है कि बहुश्रुत एवं गीतार्थ भिक्षु अनेक द्वार वाले उपाश्रय में अकेला नहीं रह सकता, अपितु एक द्वार वाले उपाश्रय में दोनों समय धर्म जागरणा करते हुए अकेला रह सकता है।

सूत्र ८—९ में कथन है कि जहां पर अनेक स्त्री-पुरुष मैथुन सेवन करते हैं उन्हें देखकर श्रमण हस्तकर्म और मैथुन सेवन करके शुक्र पुद्गलों को निकाले तो क्रमशः गुरुमासिक और गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

सूत्र १०—११ में अन्य गण से आये हुए शिथिलाचारी भिक्षु—भिक्षुणी की चारित्र शुद्धि करके सम्मिलित करने का विधान किया गया है।

सप्तम उद्देशक

सूत्र १—२ में निर्देश है कि प्रवर्तिनी अन्य गण से आई हुई संक्लिष्ट चित्तवाली साध्वी को आचार्य आदि की आज्ञा के बिना तथा उसके दोषों की शुद्धि कराये बिना अपनी नेश्राय में नहीं रख सकती है और उक्त साध्वी आचार्य आदि के पास आये तो प्रवर्तिनी से पूछे बिना भी वे निर्णय ले सकते हैं।

सूत्र ३—४ में बताया गया है कि यदि कोई साधु या साध्वी बार—बार शिथिलाचरण करे तो उसके साथ साम्भोगिक व्यवहार बंद किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए साध्वियाँ आचार्य आदि के पास परस्पर प्रत्यक्ष वार्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं कर सकती, किन्तु साधु प्रत्यक्ष बात कर सकते हैं। यदि शिथिलाचारी साधु एवं साध्वी पश्चात्ताप करे तो साम्भोगिक व्यवहार बन्द करना नहीं कल्पता है।

सूत्र ५ से ८ में दीक्षा देने, न देने का विधान किया गया है। साधु अपने लिए साध्वी को और साध्वी अपने लिए साधु को दीक्षित नहीं कर सकते हैं, अपितु साधु, किसी अन्य साध्वी की शिष्या बनने का निर्देश कर सकता है तथा इसी तरह साध्वी भी निर्देश कर सकती है।

सूत्र ९ व १० का अनुवाद दो प्रकार से किया गया है– १. साध्वी अति दूरस्थ आचार्य एवं प्रवर्तिनी की निश्रा स्वीकार करके दीक्षा न लेवे, किन्तु साधु दूरस्थ आचार्य आदि की निश्रा स्वीकार करके दीक्षित हो सकता है–**(त्रीणिछेदसूत्राणि, ब्यावर)**। २. साध्वी को अतिदूरस्थ क्षेत्र की ओर जाना नहीं कल्पता है, जबकि साधु जा सकते हैं **(ववहारसुत्तं–मुनि कन्हैयालाल 'कमल')**

सूत्र ११–१२ में कथन है कि यदि कोई साध्वी, अन्य साध्वी से क्षमायाचना करना चाहती है तो वह परोक्ष क्षमायाचना कर सकती है, किन्तु साधु को प्रत्यक्ष क्षमायाचना करना जरूरी है।

सूत्र १३–१४ में निर्दिष्ट है कि कालिक सूत्र की स्वाध्याय वेला में उत्कालिक सूत्र का स्वाध्याय करना साधु के लिए अकल्पनीय है, किन्तु साध्वी निर्ग्रन्थ की नेश्राय में स्वाध्याय कर सकती है।

सूत्र १५–१६ में निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थियों को स्वाध्याय वेला में ही स्वाध्याय करने का निर्देश दिया गया है, अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय नहीं करने का निर्देश है।

सूत्र १७ में शरीर संबंधी अस्वाध्याय होने पर स्वाध्याय न करने का निर्देश है। किन्तु साधु-साध्वी परस्पर वाचना दे सकते हैं।

सूत्र १८–१९ में बताया गया है कि ३० वर्ष तक दीक्षा पर्याय वाली साध्वी को ३ वर्ष के श्रमण पर्याय वाले निर्ग्रन्थ को उपाध्याय के रूप में स्वीकार करना कल्पता है और ६० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाली साध्वी को आचार्य या उपाध्याय के रूप में ५ वर्ष के दीक्षा पर्याय वाले निर्ग्रन्थ को स्वीकार करना कल्पता है, किन्तु बिना आचार्य एवं उपाध्याय के रहना नहीं कल्पता है।

सूत्र २१–२२ में निर्देश है कि यदि शय्यातर मकान बेच देवे या किराये पर दे देवे तो स्थिति के अनुसार पूर्व स्वामी या नये स्वामी या दोनों की आज्ञा ली जा सकती है।

सूत्र २३ के अनुसार गृहस्वामी के न होने पर ज्ञातकुलवासिनी विधवा लड़की गृहस्वामी के पिता, भाई या पुत्र की आज्ञा लेकर निर्ग्रन्थ उपाश्रय में ठहर सकता है। सूत्र २४ में कथन है कि यदि मार्ग में ठहरना पड़े तो वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यमान व्यक्ति को आज्ञा लेकर ही ठहरना चाहिए। सूत्र २५—२६ में राज्य व्यवस्था परिवर्तित होने पर उस राज्य में विचरण करने के लिए साधु.साध्वी को पुनः आज्ञा लेनी चाहिए।

अष्टम उद्देशक

सूत्र १ में साधु को निर्देश है कि वह स्थविर गुरु की आज्ञा से ही शयनासन ग्रहण करे। सूत्र २ से ४ में शय्यासंस्तारक लाने की विधि का उल्लेख है। शय्यासंस्तारक हलका एवं एक हाथ से उठाया जा सके ऐसा लाना चाहिए। ३ दिन तक एक ही बस्ती में गवेषणा करके लाया जा सकता है। वृद्धावस्था में काम आयेगा इस प्रयोजन से लाने पर ५ दिन तक गवेषणा की जा सकती है एवं दूर से भी लाया जा सकता है।

सूत्र ५ में एकल विहारी स्थविर को अपने भण्डोपकरण किसी को सम्भला कर गोचरी जाना कल्पता है और पुनः लौटने पर उसकी आज्ञा से ग्रहण करना कल्पता है।

सूत्र ६ से ९ में बताया गया है कि निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को शय्यासंस्तारक अन्यत्र ले जाना हो तो वह स्वामी से पुनः आज्ञा प्राप्त करे। यदि कुछ समय के लिए शय्यासंस्तारक दिया हो तो भी पुनः आज्ञा प्राप्त करे।

सूत्र १०—११ में कहा है कि पहले शय्या संस्तारक ग्रहण करने की आज्ञा लेवे फिर ग्रहण करे। जहां मुश्किल से शय्या मिलती हो वहां पहले ग्रहण किया जा सकता है फिर आज्ञा ली जा सकती है। स्वामी यदि अनुकूल न हो तो अनुकूल वचनों से आचार्य आदि उसको अनुकूल करे।

सूत्र १२ से १५ में गिरे हुए या विस्मृत उपकरण ग्रहण का विधान किया गया है। निर्ग्रन्थ किसी कार्यवश बाहर जावे तब उसका उपकरण गिर जावे और अन्य साधर्मिक श्रमण को दिखे तो उस उपकरण को लेते समय यह भावना रखे कि जिसका है उसे दे दूंगा और उसे दे देवे, यदि कोई भी भिक्षु उस उपकरण को अपना न कहे तो उसे परठ देवे, अपने पास न रखे।

सूत्र १६ में सूचना है कि यदि अतिरिक्त पात्र ग्रहण किये हैं तो जिनके लिए ग्रहण किये है उन्हें ही देना कल्पता है।

सूत्र १७ में ऊनोदरी तप के बारे में बताया गया है।

नवम उद्देशक

सूत्र १ से ८ में शय्यातर के यहां अतिथि, नौकर, दास, प्रेष्य आदि के लिए आहार बना हो और उन्हें पूर्ण रूप से दे दिया गया हो, उसमें से भिक्षु ले सकता है, किन्तु शय्यातर को वापस आहार लौटाने की स्थिति हो तो आहार लेना नहीं कल्पता है।

सूत्र ९ से १६ में कथन है कि शय्यातर का ऐसा स्वजन जिसका सम्पूर्ण खर्च शय्यातर देता हो, वह अलग भोजन बनाये तो भी भिक्षु को वह आहार लेना नहीं कल्पता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १७ से ३६ के अनुसार शय्यातर का भागीदार यदि भागीदारी वाली वस्तु देवे तो उसे लेना भिक्षु के लिए अकल्पनीय है। बिना भागीदारी वस्तु ले सकता है। यदि बंटवारा हो गया हो तो भी वस्तु ली जा सकती है।

सूत्र ३७ से ४० के अनुसार सप्तसप्तमिका (४९ दिन रात में १९६ भिक्षा दत्तियां) अष्ट-अष्टमिका (६४ दिन रात में २८८ भिक्षादत्तियां) नवनवमिका (८१ दिन रात में ४०५ भिक्षा दत्तियां) इन चार प्रतिमाओं का आराधन साधु—साध्वी दोनों ही कर सकते हैं।

सूत्र ४१—४२ में दो भिक्षु प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है। स्वमूत्र पीने की छोटी व बड़ी प्रस्रवण प्रतिमा क्रमश: ७ व ८ उपवास से पूर्ण की जाती है। उपवास के दिनों में शुद्ध मूत्र दिन में पीया जा सकता है, रात्रि में नहीं।

सूत्र ४३—४४ में दत्ति का स्वरूप बताया गया है। एक बार में जितना आहार अखण्ड धार से दिया जाए वह एक दत्ति कहलाता है।

सूत्र ४५ में तीन प्रकार के खाद्य पदार्थ बताये गए हैं— १. फलितोपहृत (मिष्ठान्न, नमकीन आदि) २. शुद्धोपहृत (चने, फूली आदि) ३. संसृष्टोपहृत (रोटी, भात, खिचड़ी आदि)

सूत्र ४६ में अवगृहीत आहार के तीन प्रकारों का उल्लेख है— १. परोसने के लिए ग्रहण किया २. परोसने के लिए ले जाता हुआ ३. बर्तन में परोसा जाता हुआ। कुछ आचार्य दो प्रकार का भी उल्लेख करते हैं— १. परोसने के लिए ग्रहण किया जाता हुआ २. बर्तन में परोसा हुआ।

दशम उद्देशक

सूत्र १ व २ में यवमध्य चन्द्रप्रतिमा व वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा का वर्णन है। विशिष्ट संहनन वाले ही इन प्रतिमाओं को स्वीकार करते हैं। इनकी समयावधि एक—एक मास होती है। इन प्रतिमाओं को स्वीकार करने वाला एक मास तक शरीर के परिकर्म एवं ममत्व से रहित होता है। उसे अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों उपसर्ग एवं परीषह होते हैं। इन प्रतिमाओं में आहार पानी की (दत्तियों की) हानि-वृद्धि की जाती है। जहां आहार की आकांक्षा करने वाले सभी द्विपद—चतुष्पद आहार ले लौट गए हों, जहां एक ही व्यक्ति आहार कर रहा हो वहीं से आहार लिया जा सकता है। जहां अनेक व्यक्ति भोजन कर रहे हों, गर्भिणी स्त्री हो, बच्चे वाली हो उससे आहार लेना नहीं कल्पता है। जिसके दोनों पैर देहली के अन्दर या बाहर हों उससे आहार लेना भी नहीं कल्पता है। सूत्र ३ में पांच प्रकार के व्यवहार का निरूपण किया गया है— **पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तंजहा— आगमे, सुए, आणा, धारणा, जीए।** अर्थात् १. आगम व्यवहार २. श्रुतव्यवहार ३. आज्ञा व्यवहार ४. धारणा व्यवहार और ५. जीत व्यवहार— इन पांच में से जिस समय जो व्यवहार उपलब्ध हो उस समय उसी से क्रमश: व्यवहार करना चाहिए। जो श्रमण निर्ग्रन्थ मध्यस्थ भाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से उस उपलब्ध व्यवहार को करता है वह जिनाज्ञा का आराधक होता है। श्रमण आगम व्यवहार की प्रमुखता वाले होते हैं। भाष्यकार व्यवहार सूत्र का मूल पाठ यहीं तक मानते हैं। सूत्र ४ से ३७ तक के सूत्र व्यवहार सूत्र की चूलिका रूप हैं।

सूत्र ४ से ८ में संयमी पुरुष की पांच चौभंगिया कही गई हैं। प्रत्येक पुरुष में गुण भिन्न–भिन्न होते हैं। इनमें गुणों और मान को संबंधित करके बताया गया है। जो साधु गण के लिए कार्य करके भी अभिमान नहीं करते वे उत्कृष्ट हैं। कार्य नहीं करने पर अभिमान करते हैं वे निकृष्ट हैं। जो मान व कार्य दोनों करते हैं वे मध्यम और जो न मान करते हैं न कार्य वे सामान्य हैं।

सूत्र ९ से ११ में धर्मदृढ़ता की चौभंगिया कही गई हैं।

सूत्र १२ से १५ में आचार्य एवं शिष्यों के प्रकार का निरूपण किया गया है। इन चौभंगियों में गुरु एवं शिष्य से संबंधित विषयों का कथन है।

सूत्र १६ में वय स्थविर (६० वर्ष की आयु वाला), श्रुत स्थविर (स्थानांग– समवायांग का धारक) एवं पर्याय स्थविर (२० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला), स्थविर के इन तीन प्रकारों का कथन है।

सूत्र १७ में बड़ी दीक्षा देने का कालप्रमाण बताया गया है– उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य काल प्रमाण क्रमशः ६ मास, ४ मास व ७ रात्रि का है।

सूत्र १८ में निर्देश है कि ८ वर्ष से कम उम्र वाले बालक को बड़ी दीक्षा नहीं देनी चाहिए।

सूत्र २०—२१ में निर्देश है कि १६ वर्ष से कम उम्र वाले बालक को आचार प्रकल्प का अध्ययन नहीं कराना चाहिए।

सूत्र २२ से ३६ में दीक्षा पर्याय के साथ आगम अध्ययन क्रम बताया गया है, जो इस प्रकार है–

दीक्षा पर्याय	**आगम अध्ययन**
३ वर्ष	आचारांग, निशीथ
४ वर्ष	सूत्रकृतांग
५ वर्ष	दशाकल्प, व्यवहार सूत्र
८ वर्ष	स्थानांग, समवायांग
१० वर्ष	व्याख्या प्रज्ञप्ति
११ वर्ष	क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति, महल्लिका विमान प्रविभक्ति, अंगचूलिका, वर्गचूलिका व व्याख्या प्रज्ञप्ति चूलिका
१२ वर्ष	अरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात, वेलन्धरोपपात
१३ वर्ष	उत्थान श्रुत, समुत्थान श्रुत, देवेन्द्रोपपात, नागपरियापनिका
१४ वर्ष	स्वप्न भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५ वर्ष	चारण भावना,
१६ वर्ष	तेजोनिसर्ग
१७ वर्ष	आशीविष भावना
१८ वर्ष	दृष्टिविष भावना
१९ वर्ष	दृष्टिवाद

२० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला श्रमण सर्वश्रुतानुवादी हो जाता है। सूत्र ३७ में उल्लेख है कि आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, साधर्मिक, कुल, गण तथा संघ इन दस की वैयावृत्य करने से श्रमण महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाला होता है।

इस प्रकार व्यवहार सूत्र अनेक विशेषताओं को लिए हुए है। इसमें श्रमण जीवन में लगने वाले दोष एवं प्रायश्चित्त का विधान तो है ही, साथ ही विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ऊनोदरी तप, संघ-व्यवस्था के नियम आदि अनेक विषयों का विवेचन भी किया गया है। व्यवहार सूत्र पर व्याख्या साहित्य भी लिखा गया है— व्यवहार भाष्य, व्यवहार चूर्णि, व्यवहार वृत्ति आदि प्रमुख व्याख्या साहित्य है।

संदर्भ ग्रन्थ

१. त्रीणि छेदसूत्राणि— आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

२. ववहार सुत्तं— मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

३. छेदसूत्र एक परिशीलन— आचार्य देवेन्द्र मुनि

४. जैनागम नवनीत (पुष्प ७ से १२)—आगम मनीषी तिलोक मुनि

—सुपुत्री श्री पुखराज बोहरा

बोहरो की पोल , महिला बाग, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org